शोध
विमर्श

नाट्य कर्म के गांधी: हबीब तनवीर

डॉ. वंदना कुमार
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

प्रस्तावना: हबीब तनवीर के विशाल और बेहद उजले अवदान का वस्तुनिष्ठ आकलन करने पर यह ज्ञात होता है कि आधुनिक भारतीय रंगमंच के निर्माताओं में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। सिर्फ हिंदुस्तानी रंगमंच में ही नहीं थियेटर के पूरे विश्व इतिहास में ऐसे किसी रंगकर्मी की मिसाल मिलना मुश्किल है जिसने लगातार एक ही दिशा में, एक तरह का, एक ही ड्रामा ग्रुप के साथ आखिर तक अदाकारों के एक ही समूह को लेकर लगभग 50 वर्षों तक रंगकर्म किया हो।

पश्चिम जाकर हबीब तनवीर ने अपने देश को ज्यादा अच्छी तरह से पहचाना। कलात्मकता के स्तर पर वे निरंतर उन रूढ़ियों को तोड़ते रहे, जिन्होंने आजादी के बाद के हिन्दी रंगमंच का नैसर्गिक विकास नहीं होने दिया। उनका सबसे बड़ा योगदान, जो शायद उनके किसी भी अवदान से बड़ा है वह है, भारतीय रंग परम्परा को देखने की समझ को विकसित करना। उन्होंने शास्त्र को लोक की निगाह से देखने पर बल दिया। हबीब तनवीर नाट्य जगत के गांधी हैं।

उनके बारे में नेमिचंद्र जैन कहते हैं कि –''जिन लोगों ने साहसपूर्वक और कल्पनाशीलता से, जोखिम उठाकर और अपनी जिद पर अड़े रहकर भारत की बीसवीं शताब्दी और उसकी आधुनिकता और सर्जनात्मकता को निर्णायक ढंग से रचा, दूसरों के लिए राह और दिशा खोली, जातीय परम्परा और आधुनिकता के द्वैत का सृजनधर्मी अतिक्रमण किया उनमें हबीब तनवीर का नाम बहुत ऊंचा वरेण्य और अविस्मरणीय है। उनका संघर्ष एक स्तर पर अपने समाज के भद्रलोक और मध्यवर्ग के नकलचीपन से था तो दूसरे स्तर पर उन समकालीनों से भी, जो पश्चिम से इस कदर आक्रांत थे कि जातीय रंग परम्पराओं का उनके लिए मानों अस्तित्व ही नहीं था। रंगमच पर पश्चिमी किस्म के यथार्थवाद का आतंक एक और समस्या थी। इन सभी चुनौतियों का सामना उन्होंने बहुत दम-खम से किया और अंतत: स्वयं उनकी रंग-दृष्टि, रंग व्यवहार दूसरों के लिए चुनौती बनकर उभरे। हबीब नाटक प्रस्तुत या मंचित नहीं करते थे: वे नाटक खेलते थे। वे कलाओं में लीला और क्रीड़ा की जो लम्बी भारतीय परम्परा रही है उसका उन्होंने हमारे समय के लिए पुनर्वास और पुनराविष्कार किया। उन्होंने करके दिखाया और जताया कि आधुनिकता के टीम-टाम, शिक्षा और संस्कारों से कोसों दूर रहने वाले लोक कलाकार अपनी बोली में ऐसे नाटक खेल सकते हैं जो मानवीय स्थिति और संकट, नियति और संघर्ष के बारे में ऐसा कुछ चरितार्थ कर सकते हैं जो बहुत नकचढ़ी आधुनिकता का भी लक्ष्य रहा है।''[1] प्रस्तुत शोध पत्र में हबीब तनवीर के नाट्यकर्म तथा नाट्य जगत में उनकी जगह गांधी के सदृश्य है की पड़ताल की गयी है ।

उनका संघर्ष एक स्तर पर अपने समाज के भद्रलोक और मध्यवर्ग के नकलचीपन से था तो दूसरे स्तर पर उन समकालीनों से भी, जो पश्चिम से इस कदर आक्रांत थे कि जातीय रंग परम्पराओं का उनके लिए मानों अस्तित्व ही नहीं था।

हबीब तनवीर ने आरंभ में जिस राह पर कदम रखा था उसमें अंत समय तक चलते रहे। वे छत्तीसगढ़ की कला और संस्कृति के साथ आजीवन जुड़े रहे। उन्होंने अपनी संस्कृति के उत्थान और उसके संरक्षण के लिए जी तोड़ मेहनत की। उनका मानना था कि ''कोई भी सच्चा रंगमंच, खासकर वह जो समाजी रूप से मानीखेज और कलारूप में दिलचस्प हो, संभव नहीं जब तक आदमी अपनी कला को, अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं में अवस्थित न करे।''[2] ब्रेष्ट के नाट्यादर्शों से बेहद प्रभावित होने के बावजुद राडा से पढ़ कर भारत लौटने के बाद वे अपने स्थानीय देसी मुहावरे की खोज में लग गए।

भारतेंदु के बाद भारतीय समाज के सांस्कृतिक संघर्ष को नेतृत्व देने वाले कुछ गिने-चुने व्यक्तियों में हबीब तनवीर भी शामिल थे। उन्होंने भारतेंदु का एक भी नाटक मंचित नहीं किया, फिर भी वे अपने रंगचिंतन में भारतेंदु के सर्वाधिक निकट रहे। उन्होंने लोक की व्यापक अवधारणा को अपने रंगकर्म का आधार बनाते हुए अभिव्यक्ति के नए कौशल के जादू से दर्शकों को विस्मित किया। विस्मय अक्सर हमारी चेतना को जड़ बनाता है, पर हबीब तनवीर के रंग कौशल का जादू हमें इसलिए विस्मित करता है कि उनकी प्रस्तुतियों में सहजता के साथ सारे प्रपंच हमारे सामने खुलने लगते हैं, जो सदियों से मनुष्य को गुलाम बनाए रखने के लिए मनुष्य द्वारा ही रचे जा रहे हैं। इन प्रपंचों के तहख़ानों में निर्भय होकर उतरना और सारे गवाक्षों को खोलकर आवाज़ लगाना कि सत्य क्या है, आज सरल काम नहीं है। रचनाकर्म में इसके दोहरे खतरे होते हैं। एक तो रचनाकर्म के ह्रास का ख़तरा हमेशा बना रहता है और दूसरी ओर प्रपंच रचनेवालों की हिंसा का सामना भी करना पड़ता है।

हबीब तनवीर इन दोनों खतरों से जूझते रहे। कलात्मकता के स्तर पर वे निरंतर उन रूढ़ियों को तोड़ते रहे, जिन्होंने आजादी के बाद के हिन्दी रंगमंच का नैसर्गिक विकास नहीं होने दिया। तथाकथित बौद्धिकता और आभिजात्यपन की लालसा में इन रूढ़ियों के आधार पर हिन्दी रंगमंच का ऐसा स्वरूप उभरा, जो आज सामान्य जनता की सांस्कृतिक भूख मिटाने में सक्षम नहीं है।

हबीब तनवीर ने इन रूढ़ियों को तोड़ते हुए नए प्रयोग किए और प्रयोगों की सफलताओं-विफलताओं के बीच से अपनी प्रस्तुतियों के लिए नई रंगभाषा और नई रंगयुक्तियों की खोज की। उन्होंने अपने नाटकों की केन्द्रिय चेतना से कभी कोई समझौता नहीं किया। अपने हर नाटक को अपने समय और समाज के प्रति उत्तरदायी बनाए रखा। समाज के सारे प्रपंचों और अंतर्द्वंद को उजागर करते हुए उस शक्ति से कभी भयभीत नहीं हुए या समझौता नहीं किया, जो मनुष्यता के विरोध में संगठित होकर हिंसा करती है। ''हबीब सांझा संस्कृति की पक्षधरता करते रहे हैं। धार्मिक आडम्बरों, बाह्याचारों, कट्टरताओं, ध्वजवाहकों की क्रूरताएं हो या पूंजी के मद में बौराई शक्तियों की हिंसा, हबीब तनवीर ने सबका सामना किया है। उनके रंगकर्म की आधुनिक चेतना को झुठलाने के प्रयास हुए। उन्होंने दृढ़ता से इसका सामना किया।''[3]

हबीब तनवीर के सभी नाटकों में राजनीति है, राजनीति का पक्ष है। वर्गदृष्टि है, शोषित-पीड़ित जनता का पक्ष है। धर्मचरित्र है, शोषकों पर हंगामा है। उन पर मजाक है, व्यंग्य है, अपने समूचे निहितार्थ में हबीब साहब के नाटक राजनीतिक रंगमंच का निर्माण करते थे।

हबीब तनवीर के रंग-व्यक्तित्व के दो पक्ष अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्होंने उनके समूचे रंगकर्म को दिशा-विशेष की ओर उन्मुख कर दिया। वे दिल से शायर थे और दिमाग से मानवतावादी, दिल और दिमाग का ये रिश्ता उनके समूचे रंग-चिंतन में पूरी शक्ति के साथ उभरता है। उनके व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता है-कभी भी हार न मानने की जिद। उनकी यह जिद अपने रंग-बिरंगे अंदाज में अनेक रूपों में नजर आती थी। उनकी यह जिद लचीली होते हुए भी उनके मकसद से समझौता करने से इंकार करती रही। जिंदगी के अनेक मोड़ पर उनकी इस जिद ने उन्हें संकट में भी डाला और उनके संघर्ष को नए तेवर भी दिए थे।

भारतरत्न भार्गव जी का विचार है कि ''हबीब तनवीर भारतीय रंगमंच के जिस मुकाम पर पहुंचे हैं, इसी जिद की बदौलत वे अपने दिल और दिमाग को जुझारू रखने में समर्थ हो सके।''[4] हबीब तनवीर जी की रंग प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने विफलताओं, विरोधों और कटु-आलोचनाओं की मार सहते हुए भी अपनी रचनात्मक जिद नहीं छोड़ी, बल्कि अपनी विफलता के कारणों को बारीकी से देखते-परखते हुए उन्हें लगातार तराशते रहे और अंततः सफलता की राह स्वयं निर्धारित की।

हबीब तनवीर की अपनी निजी जीवन यात्रा बहुत कठिन रही है। उस समय रंगकर्म करना आसान नहीं था। क्योंकि मंच की तरह चीजें आसानी से सुलभ नहीं थी, लेकिन अपनी जिद से उन्होंने इसे संभव बनाया। 20वीं शताब्दी में जिन लोगों ने भारतीय उपमहाद्वीप में आधुनिकता को संभव किया और आधुनिकता को संभव ही नहीं किया, दूसरों के लिए आधुनिक को संभव बनाया तथा दूसरों के लिए आधुनिक होने का रास्ता खोला। ऐसे अगर 20-30 नाम विभिन्न क्षेत्रों से लिए जाएं तो उनमें निश्चय ही हबीब तनवीर का नाम जरूर होगा, क्योंकि उन्होंने आधुनिक रंगमंच को लोक की हमारी अवधारणा को सीधे-सीधे मुख्य मंच पर आधुनिकता और शास्त्रीयता की मुख्य रंगभूमि पर स्थापित किया है, जिसकी विकास की जरूरत थी, ये ऐतिहासिक और क्रांतिकारी काम था। ये ऐसा काम था जो सिर्फ रंगमंच तक परिसीमित नहीं था, जिसके अभिप्राय और भी निकलते रहे हैं।

ISSN 2231-0479

अशोक वाजपेयी कहते हैं कि हबीब तनवीर ने बोली में समकालीन होना सिखाया। सिद्ध किया। उन्होंने यह संभव कर दिखाया कि बोली ही समकालीनता का एक संस्करण है। समकालीन सिर्फ वो नहीं है जो तथाकथित नागरिक किस्म की आधुनिकता में जीता है। समकालीन वो है जो पहाड़ों में रहता है, जंगलों में रहता है जो समकालीन अभिर्प्रायों से अंजान है। तीन लोगों ने जो अलग-अलग क्षेत्रों से हैं, मध्यप्रदेश में काम किया। सबसे क्रांतिकारी काम तो निश्चय ही हबीब तनवीर का ही है। सम्पूर्ण जातीय सम्पदा और संस्कृति, उसके बिम्ब, उसकी मुद्राएं हैं, उन सबको गूंथकर कुछ ऐसा करना जो स्थानीय भी है और जो स्थानीय से आगे भी जाना है, वो सब हबीब तनवीर ने किया।[5]

हबीब तनवीर के आलोचक अक्सर यह बात कहते थे, कि हबीब तनवीर के नाटक सिर्फ अपनी लोक शैली के दम पर टिके हैं ये इल्जाम गलत और विवादास्पद हैं। हबीब तनवीर चिंतन और दृष्टिकोण से नये-नये नाटकों का मंचन करते हैं। उन्होंने राजनैतिक नाटक तथा वर्तमान स्थितियों पर नुक्कड़ नाटक भी लिखे चूंकि उनका चिंतन, उनकी सोच वहीं से उठी इसलिए राजनीतिक और सामाजिक समस्याएं उनके नाटकों में बरबस आ ही जाती थीं। 'हिरमा की अमर कहानी' एक पूरा राजनीतिक नाटक है। चरणदास चोर पूर्ण रूप से प्रशासन के खिलाफनाटक है।

हबीब के नया थियेटर में सीखने-सिखाने का काम एक तरफा नहीं दो तरफा था। ''दो पक्षों में एक ओर हबीब तनवीर थे, जो उच्च शिक्षा प्राप्त थे, दूसरी ओर छत्तीसगढ़ अंचल, रायपुर जिले के अनपढ़ ग्रामीण जिनमें से कइयों ने पाठशाला का मुंह भी नहीं देखा था, जो अपने गांव के आसपास के इलाकों से बाहर नहीं गये थे, जिन्हें अपने क्षेत्र के लोक नाच-गानों के अलावा और किसी प्रकार के नाच-गाने का ज्ञान नहीं था, जो नाटक की मंचन पद्धति से सर्वथा अनभिज्ञ थे। काफी लम्बे अरसे तक हबीब के साथ काम करने वाले छत्तीसगढ़ी या जनजाति कलाकारों में भुलवाराम, फिदाबाई, देवीलाल, दीपक तिवारी, शाह नवाज और पूनमबाई आदि सभी इस बात को स्वीकार करते रहे कि हबीब तनवीर के कारण ही वे कुछ बन सके।''[6]

भारत लौटते ही उन्होंने अपने लंदन के सीखे हुए को 'अनसीखा' करना शुरू किया और इसके साथ ही उन्होंने अपने कलात्मक विकास की वह दिशा पकड़ी जो दूसरे लंदन से सीखे निर्देशकों के ठीक विपरीत थी। तनवीर का विश्वास गहरा हुआ था कि कोई भी सच्चा रंगमंच, खासकर वह जो समाजिक रूप से मानीखेज और कलारूप में दिलचस्प हो, संभव नहीं जब तक आदमी अपनी कला को, अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं में अवस्थित न करें। दरअसल ''पश्चिम जाकर हबीब तनवीर ने अपने देश को ज्यादा अच्छी तरह से पहचाना।''[7]

इस गहरी समझ का परिणाम था कि उस पूरे औपनिवेशिक सोच को दरकिनार किया गया जो उस वक्त के रंगमंच पर हावी था। तनवीरजी ने अपने प्रदर्शन के एक स्थानीय देशी मुहावरे की लम्बी खोज शुरू की। इस खोज के मुख्यत: दो स्तर हैं, जिनसे गुजरकर तनवीरजी ने वह मौजूदा मुहावरा पाया, जो उनके रंगमंच की पहचान है। इस खोज का पहला स्तर 'जिसमें तनवीर ने छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों की पारम्परिक शैली और तकनीक के साथ काम किया। यूरोप से लौटने के बाद उन्होंने पहली प्रस्तुति मिट्टी की गाड़ी (शुद्रक के संस्कृत नाटक का अनुवाद) की, जिसमें उन्होंने छ: छत्तीसगढ़ी कलाकारों को रंगमंच पर उतारा। इसके अलावा इसमें लोक रंगमंच की पारम्परिक शैली और तकनीक का प्रयोग किया।' इसने पूरे नाटक को एक खास भारतीयता दी, अपने रूप और शैली में।''[8]

हबीबजी का बहुत बड़ा योगदान, जो शायद उनके किसी भी अवदान से बड़ा है वह है, संस्कृत रंग-परम्परा को या जिसे हम बड़े परिप्रेक्ष्य में कहें कि भारतीय रंग परम्परा को देखने की समझ को विकसित करना है। उन्होंने शास्त्र को लोक की निगाह से देखने पर बल दिया। ''बहुत सारे रंगकर्मी उसके लिए कोशिश कर रहे हैं, पर शास्त्रीयता को लोक की निगाह से कैसे देखा जा सकता है और किस तरह से बिछड़ी हुई, टूटी हुई कड़ियों को फिर से जोड़ा जा सकता है, यह बहुत महत्वपूर्ण काम हबीब तनवीर ने किया है।''[9] हबीब तनवीर का ऐसा कोई नाटक नहीं है जिसके अंदर गहरी दार्शनिक पृष्ठभूमि और जद्दोजहद न दिखायी देती हो। उन्होंने भारतीय संस्कृति को समकालीनता से जोड़ते हुए लोक नाटक की बीसवीं सदी में नयी शक्ति और ऊर्जा प्रदान की है। ''हबीब तनवीर के नाटक लोकधर्मी होने से ज्यादा आधुनिक धर्मी हैं और आधुनिकधर्मिता के लिए जिस-जिस चीज की जरूरत है, वह उन्होंने उसमें लायी हुई है।'[10] हबीब तनवीर की रंगधर्मिता भारतीय पारम्परिक रंगकर्म की पहचान सिद्ध हुई है। ''इनकी रंगभाषा, अभिनय पद्धति, सामाजिक प्रतिबद्धता और अंतत: दर्शक पर पड़ने वाला प्रभाव, वे प्रमुख तत्व हैं, जो इनके रंगकर्म को पाश्चात्य रंगकर्म से पूरी तरह अलग करते हैं और अंतत: आधुनिक भारतीय नाट्य-कर्म पर अपने मुहावरे की गहरी छाप छोड़ते नजर आते हैं।''[11] हबीब तनवीर का नाट्य-कर्म लय और ताल के बिना संभव नहीं था।

सुदीप बैनर्जी कहते हैं कि ''उनके नाटकों में क्लासिकल, फोक, कण्टेम्पोरेरी, इन सबका एक कण्टीन्युअम है...कौन-सी चीज कब किसमें घुल-मिल जाती है या एक हो जाती हैं, जिस चीज को आप तय करते हो कि यह बहुत क्लासिकल है उसी समय आपको उसमें बहुत सारी कण्टेम्पोररी चीज दिख जाती है। ''[12]

तनवीर जी हमेशा से छत्तीसगढ़ी भाषा, संस्कृति और कला के कायल रहे हैं। नाट्य लेखक विभु खरे से पूछे गए एक

प्रश्न कि आपने छत्तीसगढ़ का चप्पा-चप्पा छाना है। क्या आप की कोई योजना नहीं है कि एक कथा-फिल्म या वृत्तचित्रों के माध्यम से इस अंचल की संस्कृति को पूरे देश के समक्ष रखा जाय? वे कहते हैं कि-''एक जमाने से मेरे दिल में खुद यह चीज बनी हुई है कि एक क्या, बल्कि ज्यादा डाक्यूमेंटरी फिल्में बनायी जाये। फिलहाल मैं इस सोच में हूं कि किस तरह से छत्तीसगढ़ की बिखरी हुई कला जो देहातों में पड़ी हुई है, उन सबको समेटकर एक बार रायपुर जैसी जगह में रंगमंच पर लाकर एक ऐसी गोष्ठी की जाये जिसमें यहां के और बाहर के बुद्धिजीवी जमा हों और आपस में बातचीत करें इस डाईलेक्ट में जो कल्चर मौजूद है, उसके लिए क्या कुछ किया जा सकता है और करना चाहिए।''[13]

हबीब तनवीर के नाटकों में शुद्धता पर जोर नहीं है। उनमें गुजराती का भवई पुट भी है, उत्तरप्रदेश की नौटंकी का प्रभाव भी। हबीब जी का मत था कि ''आधुनिकता कोई चीज नहीं है, जो खरीदी जा सके। उसका हमारी सामाजिक स्थिति से सीधा संबंध है और आधुनिकता शब्द का इस्तेमाल करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए। कथित आधुनिकता और श्रेष्ठता का लबादा ओढ़कर हमें लोककला व संस्कृति को संवारना है, तो उसी से जुड़कर काम करना होगा।''[14]

समूचे हिन्दी प्रदेश के विभिन्न अंचलों और सुदूर क्षेत्रों की खाक छानने के बाद जिस लोक-संगीत, लोक-नृत्य और आनुष्ठानिक वृत्तियों को उन्होंने अपने नाट्य-प्रयोगों का कला-सूत्र बनाया था, वे सूत्र अब धीरे-धीरे हाथ से छूटते जा रहे हैं। विकास, औद्योगीकरण या वैश्वीकरण की चकाचौंध में वे तिरोहित होते जा रहे हैं। भारतीय आंचलिक जीवन पर विकास के नाम पर जो प्रभाव पड़ रहा है, उसकी सबसे बड़ी क्षति हमारी सांस्कृतिक धरोहर को होने लगी है। ''छोटे-छोटे गांवों में फिल्मों की फूहड़ नकल ने हमारी पारम्परिक संस्कृति पर जो भरपूर वार किया है, उससे हमारी कलात्मक अस्मिता तिलमिला गई है। अब उसे रोका नहीं जा सकता। वे इस खतरे को बखूबी समझते थे, और बार-बार इस संभावित सांस्कृतिक विभीषिका की ओर इंगित करते रहे हैं।''[15] हबीब तनवीर का यह विचार एक सपना मात्र बनकर रह गया। लोक-संस्कृति और लोक-कलाएं आज व्यापारिक प्रदर्शन और धनोपार्जन का माध्यम बनती जा रही हैं और बाज़ार की माँग के अनुसार उसमें सस्तापन आने लगा है।

भारतीय संस्कृति के तथाकथित उन्नायकों और शक्ति सम्पन्न या सत्ता सम्पन्न लोगों के लिए यह प्रगतिशीलता का परिचायक हो सकता है, लेकिन इसके कारण हमारे जिन कलात्मक मूल्यों का विघटन हो रहा है, उसकी तरफ से वे पूरी तरह बेखबर नजर आते हैं। ''उपभोक्तावादी संस्कृति किस तरह हमारे देश की एक अमूल्य विरासत को मरणोन्मुखी कर रही है, हमारे देश के सांस्कृतिक सूत्रधारों को इसका एहसास नहीं है।''[16]

निष्कर्ष : हबीब तनवीर निश्चित रूप से अद्वितीय हैं। अपने रंगकर्म के माध्यम से उन्होंने शास्त्र के ऊपर लोक को स्थापित किया और भारतीय रंगमंच को महत्त्म ऊंचाई प्रदान की। प्रयोग, प्रगति और प्रसिद्धि की छटपटाहट अगर बीसवीं सदी की पहचान रही है तो भारत की लोक परम्पराओं का विश्व भी इससे अछूता नहीं रहा है। कुछ रंग बाकायदा पूरी हुमस के साथ लोक आंगन से उठकर अपने मुल्क ही नहीं, सात समंदर पार की धरती और आकाश पर बिखर गये। अपनी परम्परा को पूजने और उसे पूरी पवित्रता से सींचने का काम जिन उत्साही, रचनात्मक और संघर्षशील कलाकारों ने कठिन समय में संभव किया, उनमें श्री हबीब तनवीर का नाम शिखर पर नजर आता है। हबीब तनवीर का नाम इसी कारण हमेशा याद किया जाएगा। जिस तरह विदेशों में भारत की पहचान गांधीजी के नाम से है, उसी तरह विश्व के नाट्य जगत में हबीब तनवीर के कारण भारत की पहचान है। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि हबीब तनवीर नाट्य जगत के गांधी हैं।

संदर्भ

1 जैन नेमिचन्द्र. नटरंग. सम्पादकीय. नयी दिल्ली, अंक 86-87 जुलाई-दिसम्बर 2010

2. (सं.) प्रसाद, कमला. कलावार्ता. जावेद मलिक, हबीब तनवीर: एक गाथा पुरुष का बनना. भोपाल, अंक-103. पृष्ठ 142.

3. (सं.) सिंह, नामवर. आलोचना. हृषीकेश सुलभ. लोक की अवधारणा और हबीब तनवीर.नई दिल्ली, अंक-36. जनवरी-मार्च. 2010. पृष्ठ 66.

4. भार्गव, भारतरत्न. रंग हबीब. पृष्ठ 21

5. (सं.)उपाध्याय, विनय. कला समय अंक-41 अगस्त-जनवरी 99-2000 बोली में भी समकालीन हैं हबीब. अशोक वाजपेयी पृष्ठ 37

6 (सं.) प्रसाद, कमला. कलावार्ता. अभिजीत कुमार मंडल. हबीब तनवीर के रंगमंचीय आयाम. भोपाल अंक-103. पृष्ठ 151.

7 (सं.) प्रसाद, कमला. कलावार्ता. हबीब तनवीर से सुशील त्रिवेदी की बातचीत. मैंने विदेश में अपने देश को पहचाना. भोपाल जनवरी, 1984 पृष्ठ 8.

8. (सं.) प्रसाद, कमला. कलावार्ता. जावेद मलिक. हबीब तनवीर: एक गाथा पुरूष भोपाल. अंक-103. पृष्ठ 143

9. (सं.) प्रसाद, कमला. कलावार्ता. हबीब तनवीर: एक सार्थक रंग संगोष्ठी जबलपुर 2002. भोपाल. अंक-103. पृष्ठ 214

10. (सं.) वही, पृष्ठ 218

11. भार्गव, भारतरत्न. रंग हबीब. पृष्ठ 16

12. (सं.) प्रसाद, कमला. कलावार्ता. हबीब तनवीर: एक सार्थक रंग संगोष्ठी जबलपुर 2002. भोपाल. अंक-103 पृष्ठ 223

13. अग्रवाल, प्रतिभा. हबीब तनवीर एक रंग-व्यक्तिव. विभु कुमार द्वारा साक्षात्कार पृष्ठ 142

14. (सं.) प्रसाद, कमला. कलावार्ता. गिरीश उपाध्याय. लोककला में शिरकत हो दख़लंदाज़ी नही. भोपाल जनवरी-1984 पृष्ठ 16.

15. भार्गव, भारत रत्न. रंग हबीब. पृष्ठ 219.

16.वही, पृष्ठ 219

ISSN 2231-0479